

## उदीयमान विश्व का बढ़ता प्रभाव\* या.वे.रेड्डी

मैं गवर्नर रेडराडो द्वारा अर्जेटीना आने तथा 'अनिश्चितता की स्थिति के दौरान मौद्रिक नीति' विषय पर केंद्रित सेंट्रल बैंक ऑफ अर्जेटीना में आयोजित इस वार्षिक मौद्रिक और बैंकिंग सेमिनार में भाग लेने के लिए आमंत्रित किये जाने पर सम्मानित हुआ हूँ। मुझे गवर्नर गार्टिन रेडराडो की सराहना करनी चाहिए कि उन्होंने यहाँ केंद्रीय बैंक के गवर्नरों, अग्रणी बाजार विश्लेषकों तथा विश्वभर में ख्याति प्राप्त शिक्षाविदों की विशिष्ट मण्डली को आमंत्रित किया है। इन महानुभावों की यह उपस्थिति गवर्नर रेडराडो की करिश्माई सखिसयत, लोकप्रियता, विद्वत्ता और बुद्धिमत्ता का प्रमाण है। मैं सेंट्रल बैंक ऑफ अर्जेटीना के पदाधिकारियों द्वारा किये गये हार्दिक आतिथ्य और उत्तम व्यवस्थाओं के लिए उन सभी को धन्यवाद देना चाहूँगा।

मेरा यह प्रस्तुतीकरण मोटे तौर पर दो भागों में है। पहले भाग में मैंने उदीयमान बाजारी अर्थव्यवस्थाओं (ईएमई) से संबंधित कुछ आम मुद्दों को उठाया है जिनमें शामिल हैं :- (i) वैश्विक संदर्भ में उदीयमान बाजारी अर्थव्यवस्थाओं (ईएमई) की बढ़ती महत्ता; (ii) इन अर्थव्यवस्थाओं में एकाभिमुखता और विमुखता (भिन्नता) दोनों की उल्लेखनीय विशेषताएं; तथा (iii) उदीयमान बाजारी अर्थव्यवस्थाओं की कुछ वर्तमान चिंताएं। दूसरे भाग में मैंने भारत के विकास और सुधारों के अनुभवों की चर्चा की है।

### I. उदीयमान बाजारी अर्थव्यवस्थाओं (ईएमई) की बढ़ती महत्ता

अर्थव्यवस्थाओं का एक ऐसा समूह जिसकी कुछ खास बाजारी विशेषताएं हैं उसे विश्व बैंक से संबद्ध अंतरराष्ट्रीय वित्त निगम के एन्टोनी डब्ल्यू. वैन. एगमील द्वारा 1981 में तथाकथित रूप से 'उदीयमान अर्थव्यवस्थाएं' माना गया और उनका नामकरण किया गया था। मोटे तौर पर 'ईएमई' उस अर्थव्यवस्था को कहा जाता है जिसमें प्रति व्यक्ति आय

\* डॉ. या.वे.रेड्डी, गवर्नर, भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा, 'अनिश्चितता की स्थिति के दौरान मौद्रिक नीति' विषय पर सेंट्रल बैंक ऑफ अर्जेटीना, ब्यूनॉस एयर्स में 4 जून 2007 को आयोजित सेमिनार में दिया गया व्याख्यान।

के स्तर निम्न से लेकर मध्यम तक होते हैं, जिसे संक्रमणकारी के रूप में जाना जाता है अर्थात् आबद्ध अर्थव्यवस्था से मुक्त (खुली) अर्थव्यवस्था की ओर बढ़ने की प्रक्रिया तथा आर्थिक सुधार के एक ऐसे कार्यक्रम पर चलना जो इसे एक सुदृढ़ और अधिक प्रतिस्पर्धी आर्थिक कार्य-निष्पादन की ओर ले जाती है और साथ ही साथ वित्तीय बाजारों सहित कारक बाजारों की कार्यप्रणाली में पारदर्शिता और दक्षता के उच्च स्तर की ओर ले जाती है। और अधिक सामान्यतया, यह कहा जा सकता है कि जो कुछ 'उदीयमान बाजार' है और जो कुछ नहीं है वह इसकी संस्थाओं की परिपक्वता पर अर्थात् - आर्थिक बाजार के खेल के नियमों पर - कानून और संस्कृति पर - तथा इन नियमों को लागू करने तथा इनके अनुपालन करने पर निर्भर करता है (कोलोडको, 2003)। परिचालन की दृष्टि से देखें तो ईएमई को तेजी से बढ़ने वाली अर्थव्यवस्थाओं के रूप में माना जाता है, जो क्रमिक रूप से विकसनशील से विकसित अर्थव्यवस्था की ओर बढ़ रही हैं। बाजार सहभागियों की दृष्टि से ईएमई वे देश हैं, जो अपनी अर्थव्यवस्थाओं को महत्तर बाजारोन्मुखीकरण की ओर ले जा रहे हैं और इस प्रकार, व्यापार, प्रौद्योगिकी के हस्तान्तरणों और निवेश में अवसरों की प्रचुरता सौंप रहे हैं।

जहाँ तेजी से बढ़ने वाली अर्थव्यवस्थाओं को परिचालनात्मक दृष्टि से ईएमई<sup>1</sup> के रूप में समूहीकृत किया गया है वहीं ईएमई का घटक बनने वाले देशों के समूह की

<sup>1</sup> ईएमई की कोई एक स्वीकार्य परिभाषा नहीं है। हालांकि उन्हें आमतौर पर उच्च वृद्धि की सम्भावनाओं वाली अर्थव्यवस्थाओं के रूप में जाना जाता है। अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष ने अपनी 'ग्लोबल फाइनेंसियल स्टेबिलिटी रिपोर्ट' (वैश्विक वित्तीय स्थिरता रिपोर्ट) में निम्नलिखित 26 देशों को उदीयमान बाजारी अर्थव्यवस्थाओं में शामिल किया है : लेटिन अमरीका में - अर्जेंटीना, ब्राजील, चिली, कोलम्बिया, मेक्सिको, पेरू, वेनेजुला; एशिया में चीन, भारत, दक्षिण कोरिया, इंडोनेशिया, मलेशिया, पाकिस्तान, फिलीपीन, ताईवान, प्रोविंस ऑफ चीन तथा थाईलैंड; यूरोप में - मध्य-पूर्व और अफ्रीका - चेक गणराज्य, मिश्र, हंगरी, इजराइल, जोर्डन, मोरक्को, पोलैंड, रूस, दक्षिण-अफ्रीका और टर्की। कुछ अन्य वर्गीकरण भी हैं जैसे अंतरराष्ट्रीय वित्त संस्थान ने ऐसे देशों की संख्या लगभग 34 मानी है।

कोई स्पष्ट रूप से परिभाषा नहीं दी गयी है और इसलिए एक समूह के रूप में ईएमई पर चर्चा करना कभी-कभी कठिन हो जाता है। तो भी 'ईएमई' समूह में प्रमुख देशों को भलीभांति मान्यता प्राप्त है तथा अंतरराष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं, अग्रणी आर्थिक आसूचना एजेंसियों, साख दर निर्धारक एजेंसियों, अग्रणी बहुराष्ट्रीय प्रतिभूति फर्मों और वित्तीय पत्र-पत्रिकाओं का अधिकाधिक ध्यान ईएमई के कार्य-निष्पादन और बाजार की दशाओं की निगरानी पर रहता है। उदीयमान बाजारी अर्थव्यवस्थाओं पर शैक्षिक और नीतिगत अनुसंधान भी बड़ी संख्या में हो रहे हैं, जिनका ध्यान खासकर मौद्रिक, वित्तीय और विनियामक नीतियों पर तथा व्यापार, वित्तीय समेकन तथा पूंजी खाते के उदारीकरण से संबंधित मुद्दों पर केंद्रित रहा है।

ईएमई तेजी से बढ़ रहे देशों के समूह का प्रतिनिधित्व करते हैं तथा विश्व उत्पाद में उनका अंश बढ़ रहा है। भौगोलिक दृष्टि से वे सारे विश्व में फैले हुए हैं जिनमें अलग-अलग संस्कृतियां शामिल हैं - एशिया, मध्य-पूर्व, योरोप, अफ्रीका तथा लैटिन अमरीका। परस्पर उदीयमान बाजारी अर्थव्यवस्था के बीच तथा शेष विश्व के साथ वृद्धिशील व्यापार प्रवाहों के कारण वे द्विपक्षीय, क्षेत्रीय और बहुराष्ट्रीय व्यापार की नीतियों और गतिविधियों की प्रगति का निर्धारण करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। उच्च प्रतिलाभ की सम्भावनाओं से आकर्षित होकर वे अंतरराष्ट्रीय निजी भारी पूंजी प्रवाहों के लिए गन्तव्य बन गयी हैं और बहुराष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं से होने वाले पूंजी प्रवाहों सहित आधिकारिक पूंजी प्रवाहों को भी बौना बना रही हैं।

आज, उदीयमान बाजारी अर्थव्यवस्थाएं एक समूह के रूप में कुल विश्व उत्पाद की लगभग 20 प्रतिशत और कुल आबादी की 80 प्रतिशत बनती हैं। वैश्विक सदेउ में ईएमई का अंश बढ़ रहा है और वह उनकी सशक्त व्यापक आर्थिक नीतियों, बेहतर होती राजकोषीय स्थितियों,

सुदृढ़ बाह्य क्षेत्रों, वृद्धिशील उत्पादकता आदि का योगदान है। कुछ हाल ही के अनुमानों के अनुसार ईएमई जल्दी ही विश्व की क्रय-शक्ति समतुल्यता पीपीपी आधारित सदेउ की आधी से आधिक की हो जायेंगी।

सेवाओं और विनिर्मित उत्पादों के अलावा तेल और खाद्य पदार्थों के आपूर्ति मांग की गतिविधियों में भी ईएमई महत्वपूर्ण हो रही है, साथ ही पर्यावरणगत सहयोग के लिए भी।

इस प्रकार आम तौर पर ईएमई के उभरने ने वैश्वीकरण की प्रक्रिया को दुतरफा बना दिया है जिसमें ईएमई वैश्विक अर्थव्यवस्था में उदासीन भाव से प्राप्त कर्ताओं से सक्रिय सहभागी के रूप में बदल रही है।

यह मान लेना उपयोगी होगा कि कुछ ईएमई भारी भरकम जनसंख्याएं, व्यापक संसाधन आधारों तथा विशाल बाजारों के कारण क्षेत्रीय आर्थिक गतिविधियों की केंद्र बन गयी हैं। उनकी आर्थिक सफलता को पड़ोसी देशों के लिए और उनके विकास की प्रक्रिया को बढ़ाने के लिए सकारात्मक (अनुकूल) बाह्य परिस्थितियां मानी जाती हैं।

सार्वजनिक नीति की दृष्टि से देखें तो, ईएमई के परिपक्व बाजारी अर्थव्यवस्थाओं के रूप में रूपांतरण का प्रबंधन एक चुनौती भरा कार्य है। वर्तमान में औद्योगिक अर्थव्यवस्थाओं द्वारा अपनाये गये रूपांतरण पथ की तुलना में, ईएमई में नीति निर्माताओं को, रूपांतरण के लिए अल्प समय-सारिणी, अधिकाधिक खुलेपन की दिशा में प्रौद्योगिकी-गत विवशताएं, सामाजिक-राजनैतिक दबावों आदि की दृष्टि से अनेक दबाव झेलने पड़े हैं।

यहाँ यह नोट करना उपयोगी होगा कि एक समूह के रूप में ईएमई, को दिये गये नाम 'उदीयमान' शब्द में वह भाव दिया है कि वे तीव्र परिवर्तन या रूपांतरण की प्रक्रिया से गुजर रही हैं। हमें यह मानना होगा कि इस रूपांतरण में जनसंख्या राजनैतिक संस्थाएं, सामाजिक दिशाएं (आयाम) तथा उनसे जुड़ी प्रवृत्तियां भी शामिल हैं, इन

व्यापक प्रसार वाले परिवर्तनों में अनिश्चितताएं, सम्भवतः कुछ उद्वेगशीलता भी अन्तर्निहित है, परन्तु अंतरराष्ट्रीय पूंजी प्रवाहों से, विशेषकर जब इन प्रवाहों में परिवर्तन घरेलू बुनियादी तत्वों से जुड़े हुए न हों, तो ये कुछ तीव्र या पेचीदी हो जाती हैं। ऐसी स्थिति में, रूपांतरण का प्रबंधन नीति निर्माताओं के लिए चुनौतीपूर्ण हो जाता है, और ऐसे प्रबंधन के लिए नीति में वचनबद्धता तथा लचीलापन इन दोनों के बीच एक अधिक कठिन और गतिशील संबंधों की अपेक्षा होगी। वास्तव में, हाल के महीनों में, अनेक ईएमई के बीच पूंजी-प्रवाहों के प्रबंधन में अनेक अभूतपूर्व नीतिगत पहलों को ईएमई के बाह्य क्षेत्र की नीतियों के वचनबद्धता और लचीलेपन के बीच परस्पर गतिशील संबंधों की विवशता के संदर्भ में देखा जाना चाहिए।

## II. ईएमई की कुछ उल्लेखनीय विशिष्टताएं

उन्नत अर्थव्यवस्थाओं में हुई 2.7 प्रतिशत की वृद्धि के मुकाबले गत दस वर्षों के दौरान उभरते बाजारों और विकसनशील अर्थव्यवस्थाओं में 5.8 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। यह विशेषता वर्तमान में इस तर्क की विश्वसनीयता को बल प्रदान कर रही है कि शायद उदीयमान देशों में वृद्धि, कुछ सीमा तक अमरीका में आयी आर्थिक मंदी को समंजित करने में सहायता कर सकेगी।

दूसरे, हाल के वर्षों में पण्य मूल्यों में उल्लेखनीय वृद्धि के बावजूद ईएमई में मुद्रास्फीति का परिवेश नरम रहा है। ईएमई में औसत मुद्रास्फीति 1990 के बाद के प्रारम्भिक वर्षों से ही नाटकीय रूप से गिरी है और कई मामलों में तो दो अंकीय महंगाई दर और तीन अंकीय महंगाई दर के स्तरों से गिरकर यह वर्तमान में पांच प्रतिशत रह गयी है। ईएमई की मुद्रास्फीति में यह गिरावट अब आधे दशक से भी ज्यादा समय से बनी हुई है - यह प्रभावपूर्ण है।

तीसरे, व्यापार की मात्रा की दृष्टि से भी उन्नत अर्थव्यवस्थाओं की तुलना में उदीयमान अर्थव्यवस्थाएं

तेजी से बढ़ी हैं। इस प्रकार, उदीयमान और विकसनशील अर्थव्यवस्थाओं से निर्यातों की मात्रा 1998-2006 के दौरान 8.9 प्रतिशत की औसत दर से बढ़ी है, जबकि उन्नत अर्थव्यवस्थाओं में यह 5.5 प्रतिशत की दर से बढ़ा है।

चौथे, ईएमई उल्लेखनीय रूप से भारी पूंजी प्रवाहों को आकर्षित कर रही हैं। ईएमई को 2006 में निवल विदेशी निजी पूंजी प्रवाहों का स्तर 256 बिलियन अमरीकी डॉलर तक पहुँच गया है। उदीयमान बाजार की आस्तियों के लिए विदेशी निवेशों की मांग ईएमई के प्रतिबद्ध बांड और इक्विटी बाजारों में निवेश प्रवाहों को आगमों में व्यापक आधार पर हुई वृद्धि में झलकती है। अंतरराष्ट्रीय बांड बाजारों में उदीयमान बाजार के कम्पनी बांडों का निर्गम रिकार्ड स्तर पर बढ़कर 2006 में 125 बिलियन अमरीकी डॉलर का हो गया।

पांचवें, निरंतर रूप से बढ़ते हुए पूंजी प्रवाहों के परिणामस्वरूप ईएमई का विदेशी मुद्रा भंडार उल्लेखनीय रूप से बढ़ गया है। इसके फलस्वरूप, सात ईएमई का विदेशी मुद्रा भंडार जी-7 समूह के विदेशी मुद्रा भंडार से दुगना हो गया है और वह वैश्विक विदेशी मुद्रा भंडार का 43.7 प्रतिशत बैठता है, जबकि जी-7 समूह के देशों का विदेशी मुद्रा भंडार कुल विदेशी मुद्रा भंडार का मात्र 21.1 प्रतिशत बैठता है। इसी प्रकार जहाँ, सात ईएमई का विदेशी मुद्रा भंडार उनके कुल सदेउ का लगभग 38 प्रतिशत बैठता है, वहीं जी-7 समूह के देशों का विदेशी मुद्रा भंडार उनके सदेउ का मात्र 4 प्रतिशत है।

छठे, निर्यातों और पूंजी खाते से उत्पन्न विदेशी मुद्रा भंडार में अर्जन के अलावा, यद्यपि सभी नहीं, पर अधिकांश ईएमई में बचत दरें उच्च बनी हुई हैं जो अनेक एशियाई और अन्य उदीयमान बाजारी अर्थव्यवस्थाओं में और तेजी से बढ़ रही हैं। इन देशों में निवेश की तुलना में बचत तेजी से बढ़ रही है।

सातवें, बाजार द्वारा वित्तपोषण में उल्लेखनीय वृद्धि को वित्तीय क्षेत्र को अद्यतन बनाने के महत्वपूर्ण प्रयासों से समर्थन मिला है, जो ईएमई को इसमें समर्थ बनाता है कि वे निवेशकों को एक उत्तरोत्तर व्यापक और उन्नत वित्तीय लिखतों का दायरा उपलब्ध करा सकें और इस प्रकार, नये प्रकार के निवेशकों को आकर्षित कर सकें। कुल मिलाकर, ईएमई उन्नत देशों के समान वित्तीय संरचनाएं स्थापित करने की दिशा में अग्रसर हैं।

हालांकि, एक समूह के रूप में ईएमई की ये मिलीजुली विशेषताएं रही हैं, परंतु कुछ मायनों में वे एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न भी हैं। ईएमई के बुनियादी आधारों में समग्र सुधार अधिकांश आधारभूत संकेतकों जैसे सदेउ, वृद्धि, मुद्रास्फीति, भुगतान-संतुलन, विदेशी मुद्रा भंडार तथा सार्वजनिक वित्त के क्षेत्र में काफी भिन्न-भिन्न स्थिति रखती हैं। अतः अब मैं ईएमई की अलग-अलग विशेषताओं (भिन्नताओं) को गिनाना चाहूंगा।

पहली, कुछ देश तेज गति से वृद्धि प्राप्त कर रहे हैं, जबकि अन्य कुछ देशों में वृद्धि की गति अपेक्षाकृत हाल के कुछ वर्षों में मंदी रही है। इसी प्रकार वृद्धि के प्रेरक अलग-अलग उदीयमान अर्थव्यवस्थाओं में भिन्न-भिन्न या असमान रहे हैं।

दूसरी, जैसा कि निर्यात-सदेउ अनुपात से पता चलता है, कुछ ईएमई के लिए हाल के वर्षों में वृद्धि के प्रेरक के रूप में बाह्य मांग अधिक प्रधान रही है, जबकि कुछ ईएमई, घरेलू-मांग से अधिक प्रेरित अर्थव्यवस्थाओं वाले रहे हैं।

तीसरी, ईएमई के बाह्य क्षेत्र के कार्य-निष्पादन में भिन्नता रही है जैसा कि चालू खाता शेष, बाह्य ऋण का स्तर आदि मापदण्डों से झलकता है। चीन, इंडोनेशिया, मलेशिया और रूस सहित ईएमई 1998 से चालू खाता अधिशेष बनाये हुए हैं, जबकि कुछ अन्य देशों में चालू खाता घाटा बना हुआ है। बाह्य ऋणों में कटौती 2005 के

ऋण विनिमय के बाद इंडोनेशिया, रूस, ब्राजील और अर्जेंटीना में भी खास उल्लेखनीय रही है।

चौथी, ईएमई में काफी अलग-अलग प्रकार की विनिमय दर व्यवस्थाएं हैं। ऐसी विविधता (भिन्नताएं) इन देशों की आर्थिक और वित्तीय परिस्थितियों के बीच व्यापक अंतरों की दृष्टि से ही आशा की जा सकती है। तथापि, चूंकि इन देशों ने उत्तरोत्तर रूप में समेकित वैश्विक अर्थव्यवस्था में गहन रूप से जुड़े होने तथा अपनी स्वयं की अर्थव्यवस्था के परिवेशों में होने वाले परिवर्तनों से उत्पन्न होनेवाले बढ़ते हुए अवसरों को अपना लिया है, अतः उनमें से कुछ देशों में क्रमिक रूप से अधिक नमनीयता की ओर बढ़ने की प्रवृत्ति रही है।

पांचवीं, आर्थिक दायों (परम्परागत सम्पदाओं) जैसे समृद्ध प्राकृतिक संसाधनों और मानव पूंजी की दृष्टि से भी भिन्नताएं हैं।

छठी, सतत विकास में संस्थाओं का निर्माण एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। चूंकि अधिकांश ईएमई ने अलग-अलग ऐतिहासिक परिस्थितियों के अंतर्गत अलग-अलग समयों पर सुधारों के पथ को अपनाया है, अतः उनकी संस्थागत शक्ति भी भिन्न-भिन्न है। उदाहरण के लिए, चीन और रूस दोनों, केंद्रीय रूप से योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था से एक अधिक खुली अर्थव्यवस्था की ओर बढ़ रहे हैं, परंतु सुधारों के प्रति उनका दृष्टिकोण (सोच) अलग-अलग है, और इस प्रकार संस्थागत शक्ति के स्तर भी भिन्न-भिन्न हैं। संस्थागत विकास का विषम स्तर, इस तथ्य से भी देखा जा सकता है कि कुछ उदीयमान बाजारों ने 1990 के बाद के दशक में आर्थिक संकट को झेला, जबकि कुछ अन्य जैसे चीन और भारत इस संक्रामक प्रभाव से अपने आपको बचा सके।

सातवीं, ईएमई के समूह के बीच एक अन्य विषमता यह है कि उनमें से सभी को एकही प्रकार के आघातों से जूझना नहीं पड़ा है। उदाहरण के लिए यदि हम ईएमई के

तेल व्यापार को देखें तो उनमें से कुछ तेल के निवल निर्यातक हैं और तेल के मूल्यों में तेज वृद्धि का लाभ उठा रहे हैं, जबकि दूसरे तेल के निवल आयातक हैं। अतः वे ईएमई जो तेल के आयातकर्ता उपभोक्ता हैं, उन्हें अपनी दीर्घावधि वृद्धि के वित्त पोषण में ऊर्जा-सुरक्षा जैसी बड़ी चिंताओं से जूझना पड़ रहा है, जबकि अन्य देश बढ़ती हुई ऊर्जा की जरूरतों से निपटने में अपेक्षाकृत बेहतर स्थिति में हैं।

ईएमई निवेशकों को बहुत भिन्न-भिन्न विशेषताएं दर्शाते हैं। चाहे वह देश के आकार को लेकर हो या वित्तीय बाजारों के आकार को लेकर, ऊर्जागत निर्भरता का हो या विदेशी मुद्रा भंडार की स्थिति का और इससे भी अधिक प्रायः व्यापक आर्थिक कार्य-निष्पादन की स्थिति के आधार पर। इस प्रकार सभी ईएमई वैश्विक अर्थव्यवस्थाओं में हो रही गतिविधियों से समान रूप से प्रभावित नहीं होती हैं और निवेशक उनमें विभेद करते हुए प्रतीत होते हैं। इस विविधता का लाभ यह है कि किसी समकालीन व्यवहार की सम्भाव्यता अथवा संक्रामक प्रभाव की सम्भावना को इन ईएमई के बीच कुछ सीमा तक कम किया जा सकता है। तथापि, बैंक ऑफ इटली के गवर्नर डेगी ने आज के अपने पूर्ववर्ती भाषण में यह स्पष्ट किया है कि कुछ नये आर्थिक मध्यस्थक, नयी वित्तीय लिखतें और नये वितरित जोखिम विद्यमान हैं। अतः ईएमई के लिए वित्तीय बाजारों के माध्यम से, जो कि अब कहीं अधिक समेकित लगते हैं, संक्रमित जोखिम अब काफी बढ़ गया लगता है और ईएमई का वास्तविक क्षेत्र इसके परिणामों से अछूता नहीं रह सकेगा।

### III. ईएमई की वर्तमान चिंताएं

उदीयमान बाजारी अर्थव्यवस्थाओं में ठोस व्यापक नीतियों और संरचनागत सुधारों को अपनाने के कारण वृद्धि मजबूत रही है। इनकी सहायता वैश्विक कारकों ने की, जैसे - मजबूत पण्य मूल्य तथा प्रचुर वैश्विक चलनिधि।

तथापि इनमें से कुछ कारकों के बने रहने के संबंध में चिंताएं उठी हैं। उच्च निवेशगत वृद्धि, अत्यधिक उधार देना, चलनिधि की प्रचुरता का बने रहना, सुदृढ़ होती खुदरा मांग तथा व्यापार और अंतर्राष्ट्रीय भुगतानों में असंतुलन कुछ ऐसे कारक हैं जो कुछ ईएमई में चिंता का कारण बने हुए हैं।

इसके अलावा, तेल की कीमतों में बनी प्रवृत्ति से उत्पन्न अनेक अंतःवर्ती जोखिम, अमरीकी आवास बाजार में प्रतिकूल गतिविधियां, वैश्विक असंतुलनों का बने रहना, वित्तीय बाजारों में भारी उच्चेजक स्थितियां तथा मुद्रास्फीतिगत दबावों के उभरने की सम्भावना भी बनी हुई है। वैश्विक भुगतान असंतुलनों के अचानक उभरने और उनके अव्यवस्थित समायोजनों के जोखिम को पहचानना महत्वपूर्ण है। परिपक्व बाजारों की जोखिमपूर्ण वित्तीय आस्तियों के प्रति उदीयमान बाजारों का निवेश-जोखिम बढ़ा है और इसलिए समग्र वैश्विक वित्तीय जोखिम बढ़ गये हैं। जोखिम को झेलने की शक्ति के समाप्त होने या कम होने की स्थिति में और उसके फलस्वरूप उत्प्रेरित स्थिति के खुलने से उदीयमान बाजारों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है।

वैश्विक ईक्विटी बाजार भी अधिकाधिक समेकित हो रहे हैं, भले ही बाजारों के विकास का चरण कुछ भी रहा हो। अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय बाजारों में उद्वेगशीलता हाल के महीनों बढ़ी है, जिसका कारण है - 2007 के प्रारम्भ से ही अमरीकी दृष्टिबंधक बाजार के सब-प्राइम घटक में आयी मंदी। हाल के वर्षों में, हेज-फंडों की असफलताओं के सर्वांगीण प्रभावों और व्युत्पन्नी बाजारों के माध्यम से जोखिमों के प्रसार भी बढ़े हैं। इसके फलस्वरूप, जोखिमों की निगरानी पहले की अपेक्षा अब कहीं ज्यादा जटिल हो गयी है। अतः ऐसी गम्भीर चिंताएं होने लगी हैं कि वित्तीय बाजार/निवेशक इन अन्तःवर्ती जोखिमों को अपर्याप्त महत्व दे रहे हैं।

ईएमई का वैश्विक बाजारों में समेकन होने के फलस्वरूप इन ईएमई में परिचालन करने वाली वित्तीय

संस्थाओं का व्यापक विशाखीकरण हुआ है और कारोबारी रणनीतियों में व्यापक विविधता आयी है। उन्नत अर्थव्यवस्थाओं में वित्तीय संस्थाओं के उत्तरोत्तर रूप से ग्राहक तथा उत्पाद स्तर पर लाभ के अवसर खोजने के साथ ही, वित्तीय क्षेत्र से उभरने वाले विदेशी प्रत्यक्ष निवेश ईएमई के पास पहुँचने के अवसर प्रदान करते हैं जो कारोबारी अवसरों के प्रसार करने के लिए आकर्षक रणनीति प्रदान करते हैं। ईएमई की वित्तीय प्रणालियों में विदेशी फर्मों के बढ़ते लगाव ने कुछ चिंताएं पैदा कर दी हैं।

अंतिम, हाल ही में कृषि मूल्यों में हुई वृद्धि मूल्यों में संरचनागत वृद्धि की सम्भावना को दर्शाती है। प्रभावशील वृद्धि पूर्ण कार्य-निष्पादन और इसके फलस्वरूप अल्पकाल में अभूतपूर्व स्तर से भारी जनसंख्या वाले देशों, खासकर भारत और चीन में खाद्यान्नों की मांग में हुई वृद्धि ने खाद्य तेलों सहित खाद्य की मदों में भारी मांगगत दबाव को जन्म दिया है। पशु-प्रोटीनों के लिए बढ़ती हुई मांग कृषि उत्पादों के लिए मांग में और भी वृद्धि कर सकती है। कुछ देशों में कानूनी आदेशों के अनुसार ऊर्जा-विकल्प के रूप में बायो-ईंधन तैयार करने के लिए अनाज (मक्का) और तेल से बीजों के विपथन ने भी आपूर्ति-स्थिति को प्रभावित किया है। ग्लोबल वार्मिंग की बढ़ती प्रवृत्तियों में भी आपूर्ति-स्थिति में अनिश्चितताओं को बढ़ा दिया है। इसके फलस्वरूप आपूर्ति और मांग के बीच विसंगति खाद्यान्नों की कीमतों को काफी सीमा तक प्रभावित कर सकती है। इसका परिणाम होगा मुद्रास्फीति के बढ़ने की सम्भावना और इसलिए, मुद्रास्फीति की संभावनाएं भी अनुपातिक रूप में भारी हो सकती हैं, सम्भवतः औद्योगिक अर्थव्यवस्थाओं में भी। साथ ही खाद्यान्नों के मूल्यों की समस्या के प्रबंधन में सार्वजनिक नीति के लिए अनेक चुनौतियां हैं।

पहली, खाद्यान्न-उत्पादन के प्रबंधन तथा खाद्य-सुरक्षा सुनिश्चित करने में अनिवार्यतः सुदृढ़ धरेलू (देशी) राजनीतिक-आर्थिक सोच भी विद्यमान है।

दूसरी, पण्यों का बढ़ता हुआ वैश्विक वित्तीयकरण अब सहायता कर सकता है, परंतु यह काफी सीमा तक उद्वेगशीलता को भी बढ़ा सकता है, जैसा कि हाल के वर्षों में प्रमाण देखा गया है। पण्य आधारित वित्तीय लिखतों के लिए बाजारों में वित्तीय निवेशकों की उपस्थिति बढ़ती रही है।

तीसरी, अनेक ईएमई में मूल्य सूचकांकों में खाद्य-मदों के लिए भारांक काफी ज्यादा है और इसलिए, यह मौद्रिक प्रबंधन के लिए द्विविधा खड़ी कर सकता है।

चौथी, ऐसी स्थिति में, ईएमई और औद्योगिक अर्थव्यवस्थाओं के बीच मुद्रास्फीति की तुलना करने से कुछ ईएमई अपेक्षाकृत खराब स्थिति में पाये जा सकते हैं, जिसका कारण है उनके मूल्य सूचकांकों में खाद्य की मदों को उच्चतर भारांक देना।

अंतिम, वे ईएमई, जो हाल ही में हुई तेल की कीमतों में वृद्धि के द्वितीय प्रभावों का अनुसरण कर रहे हैं, खाद्य मूल्यों पर किसी सम्भावित आघात को प्राप्त कर सकते हैं, जो कुछ सीमा तक बोझ स्वरूप होगा। यदि, इस मद से प्रतिकूल गतिविधियां होती हैं, और ऐसे समय घटित होती हैं, जब वैश्विक चलनिधि खींच ली जाती है, या जोखिम के प्रीमियम तेजी से बढ़ जाते हैं; तो ईएमई के लिए नीति संबंधी द्विविधा हो सकती है, यह स्थिति दक्षता और ऊर्जस्विता दोनों की दृष्टियों से ऊपर विद्यमान जोखिमों की गणना कर लेने के बाद भी आ सकती है।

तथापि, यह नोट करना प्रसन्नतादायक है कि भारत में, सरकार ने खाद्य की मदों में तत्काल आपूर्ति की दिशा में प्रबंधन के लिए उपाय किये हैं, जो कुछ सीमा तक इस विषय में चिंताओं को कम करेंगे। राष्ट्रीय विकास परिषद की, जो भारत में उच्चतम नीति निर्मात्री संस्था है, गत सप्ताह बैठक हुई थी और उसने कृषि में उत्पादन और उत्पादकता को बढ़ाने के लिए एक व्यापक कार्यक्रम को अंतिम रूप दिया है।

#### IV. भारत : विकास और सुधारों के अनुभव

भारत दूसरा सर्वाधिक जनसंख्या वाला देश है, परंतु यह विश्व के उन देशों में से एक है जिनमें नवयुवकों की संख्या सर्वाधिक है। 'जनसंख्यागत यह लाभांश' इस सहस्राब्दि के अगले कुछ दशकों तक जारी रहेगा, ऐसी उम्मीद है। भारत बहुवाद की दृष्टि से अद्वितीय है चाहे वह भाषाओं की दृष्टि से हो या धर्मों, विचारधाराओं और परम्पराओं की दृष्टि से जो इसके 28 प्रदेशों तथा 7 संघ शासित केंद्रीय प्रदेशों में फैली हैं। इनमें से प्रत्येक की अपनी विशिष्ट पहचान तथा सामाजिक सांस्कृतिक विचारधाराएं या मान्यताएं हैं। भारत का संविधान 22 भाषाओं को सरकारी भाषाओं के रूप में मान्यता देता है। भारत में प्राकृतिक संसाधनों मानव संसाधनों की थाती है तथा इसमें अलग-अलग तरह की जलवायु वाले क्षेत्र हैं। इसकी संस्थागत संरचना अतुलनीय है, जिसमें नमनीय संघात्मकता तथा लोकतंत्र है, जिसमें सभी को वयस्क मताधिकार प्राप्त है और निजी और सार्वजनिक क्षेत्रों का सह-अस्तित्व विद्यमान है।

#### वृद्धि

भारतीय अर्थव्यवस्था की औसत वृद्धि दर 1980-81 से लेकर गत पच्चीस वर्षों में लगभग 6.0 प्रतिशत रही है जो 1950-51 से 1979-80 तक के अपने पूर्ववर्ती तीन दशकों की 3.5 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि दर से काफी सुधार दर्शाती है। और हाल के वर्षों में, भारतीय अर्थव्यवस्था उच्च वृद्धि पथ पर प्रवेश कर चुकी है जिनमें गत चार वर्षों के दौरान 8.6 प्रतिशत की वार्षिक औसत वृद्धि रही है और गत दो वर्षों में नौ प्रतिशत की वार्षिक औसत वृद्धि देखी गयी है। वर्ष 2007-08 के लिए यह वृद्धि दर लगभग 8.5 प्रतिशत पर रहने की आशा है।

वर्षों से, जब सदेउ की वृद्धि तेज हुई है, जनसंख्या की वृद्धि दर में कमी आयी है, जिससे प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि के लिए तीव्र प्रेरणा मिली है। 1990 के बाद के

दशक से प्रति व्यक्ति आय लगभग 4.0 प्रतिशत की दर से बढ़ रही है जिससे यह आशा होती है कि अगले 18 वर्षों में यह लगभग दुगुनी हो जायेगी। कोई व्यक्ति जिसकी जीवन प्रत्याशा 72 वर्ष की है वह अपनी वयस्क उम्र की आय को लगभग तीन गुनी बढ़ती देख सकता है। यदि वर्तमान 9 प्रतिशत की सदेउ की दर को बनाये रखा जा सका तो कोई व्यक्ति अपने जीवन में जीवन स्तर को लगभग 5 गुना बढ़ते हुए देख सकता है।

औद्योगिक क्षेत्र 2006-07 में सदेउ का 19.6 प्रतिशत बैठता है। भारतीय उद्योग 1996-2003 की अवधि के दौरान पुनर्विन्यास और संगठन गत परिवर्तन के दौर से उभरा है। बाद के वर्षों में, इसमें उत्पादकता तथा दक्षताजन्य लाभों को उत्तरोत्तर रूप में महसूस किया है और यह अधिकाधिक रूप से अंतरराष्ट्रीय रूप से प्रतिस्पर्धी बनता जा रहा है।

वर्तमान में भारतीय अर्थव्यवस्था का मुख्य प्रेरक इसका सेवा क्षेत्र है जो 2006-07 के दौरान सदेउ का 61.9 प्रतिशत बैठता है और इसने 2002-07 के दौरान औसत वार्षिक सदेउ वृद्धि का दो तिहाई योगदान किया है।

आर्थिक गतिविधियों को सुदृढ़ बनाने में जिनका महत्वपूर्ण समर्थन रहा है उनमें प्रमुख है 2001-02 में सदेउ के 22.9 प्रतिशत की घरेलू निवेश दर 2005-06 में बढ़कर 33.8 प्रतिशत तक पहुँच गयी है, साथ ही इसमें पूंजी का दक्षतापूर्ण उपयोग भी शामिल है। यह भी ध्यान में रखना होगा कि इस अवधि के दौरान 95 प्रतिशत से अधिक के निवेश का वित्तपोषण केवल घरेलू बचत से ही किया गया। घरेलू बचत दर में भी सुधार हुआ है जो इसी अवधि के दौरान 23.5 प्रतिशत से बढ़कर 32.4 प्रतिशत की हो गयी है। बचतों में इस सुधार में योगदान निजी कंपनी क्षेत्र और सार्वजनिक कंपनी क्षेत्र दोनों से प्राप्त हुआ है।

### मुद्रास्फीति

गत वर्षों के दौरान जहाँ वृद्धि की गति में तेजी आयी है, वहीं मुद्रास्फीति की दर को संतुलित करके निम्न स्तरों पर लाया गया है जिससे मूल्य स्थिरता को सुनिश्चित किया जा सके। प्रारम्भ में, मुद्रास्फीति की दर तेजी से बढ़ी और वह 1950 के दशक के दौरान 1.7 प्रतिशत वार्षिक औसत की तुलना में 1960 के दशक में 6.4 प्रतिशत तथा 1970 के दशक में 9.0 प्रतिशत वार्षिक की दर से बढ़ी थी। 1980 के दशक में यह मामूली-सी घटकर 8.0 प्रतिशत बढ़ी। मुद्रास्फीति की यह दर 1990-95 के दौरान 11.0 प्रतिशत वार्षिक के औसत से गिरकर 1990 के दशक के उत्तरार्द्ध में 5.3 प्रतिशत रह गयी।

हाल के वर्षों में मुद्रास्फीति की औसत दर 5.0 प्रतिशत के आसपास है। विश्व अर्थव्यवस्था के साथ भारतीय अर्थव्यवस्था के विकसित होते हुए समेकन को देखते हुए तथा उसकी सामाजिक वरीयताओं को ध्यान में रखते हुए आगे चलकर इस मुद्रास्फीति की दर को मध्यावधि में 4.0 से 4.5 प्रतिशत वार्षिक की दर के दायरे में लाने के लिए नीतिगत संकल्प और अपेक्षाएं रखी गयी हैं। यह जानना रुचिकर होगा कि स्वाधीनता प्राप्त करने की अवधि से लेकर अब तक थोक मूल्य सूचकांक औसत आधार पर पचास वर्षों में से केवल 5 वर्षों में ही 15 प्रतिशत से ऊपर रहा है। पचास वर्षों में से छत्तीस वर्षों में मुद्रास्फीति एक अंकीय रही है और अधिकांश अवसरों पर उच्च मुद्रास्फीति खाद्यान्न या तेल के आघातों के कारण रही।

### स्थिरता

लगभग चौथाई शताब्दी तक वृद्धि के चरण की एक महत्वपूर्ण विशेषता देश की आघातों को झेलने की शक्ति रही है और इस अवधि के दौरान, हमने केवल एक बार ही भुगतान संतुलन के गम्भीर संकट को झेला है जो मुख्यतः 1990 के दशक के प्रारम्भिक वर्षों में खाड़ी युद्ध से उत्पन्न



हुआ था। बाद के वर्षों में भारतीय अर्थव्यवस्था आघातों के प्रतिकूल क्रमिक प्रभावों से अपने आपको सफलतापूर्वक बचा सकी चाहे वह पूर्व-एशियाई संकट रहा हो या 1997-98 का रूसी संकट, पोखरण विस्फोट के बाद आर्थिक पाबंदी जैसी स्थिति रही हो या मई-जून 1999 में सीमा पर टकराव का संकट रहा हो। हाल के तेल और खाद्यान्न भण्डार के संकट की स्थिति में भी सुदृढ़ व्यापक आर्थिक कार्य-निष्पादन के चलते भारतीय अर्थव्यवस्था की ऊर्जस्विता और सबलता दिखाई दी है।

### बाह्य क्षेत्र

भारतीय अर्थव्यवस्था वस्तुतः 1980 के दशक के प्रारम्भिक वर्षों तक आबद्ध अर्थव्यवस्था से एक ऐसी अर्थव्यवस्था के रूप में विकसित हुई है जो खुल रही है और 1990 के दशक के प्रारम्भिक वर्षों में प्रमुख सुधारों की शुरुआत होने पर तेजी से वैश्विक अर्थव्यवस्था के साथ समन्वित हो रही है। खुलेपन की परम्परागत दृष्टि से देखें तो सदेउ के प्रति निर्यातों और आयातों (वस्तुओं और सेवाओं दोनों) का अनुपात 1991-92 के 21.1 प्रतिशत की तुलना में तेजी से बढ़कर 2005-06 में 50 प्रतिशत से अधिक का हो गया है और 2006-07 में इसके और अधिक बढ़ जाने की आशा की गयी है। निर्यात और आयात दोनों हाल के वर्षों में वृद्धि की दीर्घावधिक अवधि की प्रवृत्ति दर्शाते हैं। वणिक् व्यापार घाटा वर्तमान में सदेउ के 7 प्रतिशत के आस-पास है, तथापि चालू खाता घाटा सदेउ के 1.5 प्रतिशत से नीचे है जो मुख्यतः सेवा क्षेत्र में हमारी जानकारी और प्रतिस्पर्धी बेहतर स्थिति और साथ ही विदेशों में कार्यरत भारतीयों द्वारा भेजे गये विप्रेषणों के सशक्त समर्थन के कारण है।

चालू खाते का उदारीकरण सुधारों के पहले चरण में हुआ और हमने चालू खाते की परिवर्तनीयता अगस्त 1994 में ही प्राप्त कर ली थी। भारत में पूंजी खाते की परिवर्तनीयता को घरेलू गतिविधियों तथा विकसित होती

अंतरराष्ट्रीय वित्तीय संरचना के अनुरूप चरणबद्ध या क्रमबद्ध रूप में लाया जा रहा है, विशेषकर भू-सम्पदा और राजकोषीय क्षेत्रों में।

### राजकोषीय संघवाद

भारत की संघीय सरकार की प्रणाली के अंतर्गत, संविधान ने राजस्व की शक्तियां और खर्च करने संबंधी कार्यों को केंद्र और राज्य सरकारों के बीच बांट दिया है। राज्य सरकार द्वारा उधार लेने के कार्यक्रम वस्तुतः राष्ट्रीय सरकार द्वारा पूर्व अनुमोदन के बाद ही चलाये जाते हैं। इसके अलावा, राज्य सरकारों को देश के बाहर से सीधे उधार लेने की अनुमति नहीं है।

देश में राजकोषीय प्रबंधन उल्लेखनीय रूप से सुधारा है, विशेषकर केंद्र सरकार द्वारा राजकोषीय उत्तरदायित्व और बजट प्रबंधन अधिनियम, 2003 को अपनाये जाने के बाद से। राज्य सरकारें भी इसी प्रकार के अधिनियमों को अपना रही हैं और उन्होंने अपने राजकोषीय प्रबंधन में सुधार लाने के निरंतर प्रयास किये हैं। राजकोषीय घाटे को घटाने की दृष्टि से राजकोषीय समेकन, केंद्र और राज्य सरकारों दोनों के वित्तों में स्थान ग्रहण कर रहा है।

केंद्र सरकार का राजकोषीय प्रबंधन मोटे तौर पर सकल राजकोषीय घाटे (जीएफडी) को सकल देशी उत्पाद (जीडीपी) के तीन प्रतिशत तक लाने तथा राजस्व घाटे (आरडी) को 2008-09 तक समाप्त करने के निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त करने की दिशा में है। यह उल्लेख किया जा सकता है, कि जीएफडी/जीडीपी तथा आरडी/जीडीपी अनुपातों को घटाकर 2007-08 में पहले ही क्रमशः 3.3 प्रतिशत और 1.5 प्रतिशत तक लाने का बजट में प्रावधान किया गया है। हाल के वर्षों में राज्य स्तरीय वित्तों में भी उल्लेखनीय सुधार आया है। सभी राज्यों का जीएफडी 1999-2000 में सदेउ के 4.7 प्रतिशत से गिरकर 2006-07 में 2.7 प्रतिशत रह गया है, जबकि (आरडी) राजस्व घाटा सदेउ के 2.8 प्रतिशत से गिरकर सदेउ के 0.1

प्रतिशत पर आ गया है। अधिकांश राज्यों ने भी राजकोषीय उत्तरदायित्व विधेयक के अधिनियम बना लिए हैं। इसके परिणामस्वरूप, केंद्र और राज्य सरकारों का संयुक्त राजकोषीय घाटा 2000 के दशक के प्रारम्भिक वर्षों के दौरान रहे लगभग 10 प्रतिशत से गिरकर 2006-07 में सदेउ के 6.6 के आसपास ले आया गया है।

भारतीय राजकोषीय प्रणाली के संबंध में भारतीय रिजर्व बैंक दो महत्वपूर्ण भूमिकाएं निभाता है, वे हैं - केंद्र और राज्य सरकारों दोनों के लिए बैंकर तथा ऋण प्रबंधक के रूप में। जहाँ केंद्र और राज्य सरकारों दोनों के लिए बैंकर की भूमिका निभाने के साथ-साथ रिजर्व बैंक उनकी प्राप्तियों और भुगतानों के बीच आयी अल्पावधिक विसंगतियों से निपटने के लिए अल्पावधिक अग्रिमों के रूप में अस्थायी समर्थन भी प्रदान करता है।

रिजर्व बैंक केंद्र और राज्य सरकारों को संघीय राजकोषीय संबंधों पर परामर्शदाता की एक उल्लेखनीय भूमिका भी निभाता है। रिजर्व बैंक महत्वपूर्ण राजकोषीय मुद्दों पर राज्य सरकारों को सचेत करता है। 1997 से लेकर रिजर्व बैंक राज्य सरकारों के वित्त सचिवों का छमाही सम्मेलन आयोजित करता आ रहा है। यह सम्मेलन अपनी शुरुआत से ही, राज्य वित्तों से जुड़े मामलों पर सभी पणधारियों (राज्य सरकारों, केंद्र सरकार तथा रिजर्व बैंक) के बीच परस्पर चर्चा के लिए तथा नीतिगत और परिचालनगत महत्वपूर्ण मुद्दों पर सहमतिपूर्ण समाधान खोजने के लिए एक बहुत ही उपयोगी मंच प्रदान करता रहा है।

### लोक ऋण

रिजर्व बैंक बाजार ऋणों का प्रबंध करता है, जो केंद्र और राज्यों के लोक ऋणों का लगभग 50 प्रतिशत बनता है। सुधार-पूर्व अवधि अर्थात् 1991 से पहले, ऋण-प्रबंधन का मुख्य उद्देश्य उधार लेने की लागत को न्यूनतम करना था। तथापि इसका परिणाम बैंकों और वित्तीय संस्थाओं

द्वारा पूर्व-निर्धारित दरों पर सरकारी प्रतिभूतियों में निवेश करने की अपेक्षा के कारण वित्तीय क्षेत्र को दबाने के रूप में हुआ। वित्तीय क्षेत्र के विकास में ऐसी प्रणाली के प्रभाव की महत्ता को मानते हुए रिजर्व बैंक ने 1990 के दशक के प्रारम्भिक वर्षों से उपायों की एक श्रृंखला शुरू की ताकि नियंत्रित ब्याज दरों की व्यवस्था के स्थान पर बाजार द्वारा निर्धारित ब्याज दरों की व्यवस्था की ओर बढ़ा जा सके। रिजर्व बैंक द्वारा केंद्र सरकार के बजट घाटे के स्वतः मौद्रिकरण को 1997-98 में समाप्त कर दिया गया और वर्तमान में रिजर्व बैंक सरकारी प्रतिभूतियों के प्राथमिक निर्गमों में भाग नहीं लेता है।

यह सच है कि सदेउ के प्रतिशत के रूप में केंद्र और राज्य सरकारों के लोक ऋण का सकल भण्डार उच्च है, जो वर्तमान में लगभग 75 प्रतिशत है। यह भी नोट करना उपयोगी होगा कि भारत में लोक ऋण के प्रबंधन की कई अद्वितीय विशेषताएं हैं जो व्यापक अर्थव्यवस्था को समग्र स्थिरता प्रदान करती हैं। पहली, राज्यों को सीधे विदेशों से ऋण जुटाने की अनुमति नहीं है। दूसरी, सारा ही लोक ऋण स्थानीय मुद्रा में मूल्यवर्गित है और लगभग पूरा का पूरा लोक ऋण निवासियों द्वारा धारित है। तीसरी, केंद्र और राज्यों दोनों का लोक ऋण सक्रिय रूप से और दक्षतापूर्वक रिजर्व बैंक द्वारा विवेकसम्मत रूप से प्रबंधित होता है जो वित्तीय बाजारों को बिना किसी अनावश्यक उद्वेगशीलता के सुभीता को सुनिश्चित करता है। चौथी, सरकारी प्रतिभूति बाजार कुल कारोबार, गहनता और सहभागिता की दृष्टि से हाल के वर्षों में उल्लेखनीय रूप से विकसित हुआ है तथा अन्य महत्वपूर्ण सुधार भी प्रक्रियागत हैं। पांचवीं, अधिकांश ऋण निर्धारित कूपन (ब्याज) वाला है, और वह मुद्रास्फीति की सूची में नहीं आता। छठी, सरकार ने विदेशी मुद्रा में सरकारी विपणन योग्य ऋण निर्गम जारी नहीं किये हैं। सातवीं, संविदागत बचतें घाटों के वित्त पोषण में विपणन योग्य ऋण की अनुपूरक बनती हैं। अंतिम, ऋण के प्राथमिक निर्गमों के सीधे मौद्रिक

वित्तपोषण को अप्रैल 2006 से समाप्त कर दिया गया है। इसलिए सदेउ के प्रति लोक ऋण का उच्च भण्डार तथा गत अवधि में राजकोषीय घाटे का उच्चतर प्रतिशत जहाँ तक स्थिरता का प्रश्न है, चिंता का विषय नहीं रहा है। तथापि यह मान लिया गया है कि वित्तीय और बाह्य क्षेत्रों की दीर्घावधिक वहनीयता तथा वृद्धि की गति को बढ़ाने के लिए उसका और उदारिकरण ऋण और घाटे दोनों में विवेक-सम्मत स्तरों तक और कमी लाने की मांग करेगा।

### वित्तीय क्षेत्र के सुधार

1991 से पूर्व सुधार-पूर्व अवधि की भारतीय वित्तीय प्रणाली ने अनिवार्यतः मिश्रित अर्थव्यवस्था के ढांचे में योजनाबद्ध विकास जरूरतों को पूरा किया जहाँ सरकारी क्षेत्र की आर्थिक गतिविधि में प्रमुख भूमिका थी। सरकारी प्रतिभूतियों पर ब्याज की दरें कृत्रिम रूप से निम्न स्तरों पर रखी गयीं जो कि बाजार की स्थिति से असम्बंधित थीं। नियंत्रित ब्याज दर प्रणाली की विशेषता थी, उधार देने और उधार लेने दोनों प्रकारों के लिए विस्तृत निर्धारण जिसमें ब्याज दरों की बहुलता और जटिलता को और बढ़ाने की रही। जैसी कि आशा की जा सकती है, उन वर्षों में वित्तीय क्षेत्र में परिवेश की विशेषता थी - घटकीकरण तथा अविकसित वित्तीय बाजार साथ ही वित्तीय लिखतों की कमी। इसके परिणामस्वरूप, अस्सी के बाद के दशक की समाप्ति तक कुछ क्षेत्रों को निर्देशित तथा रियायती बैंक ऋण की उपलब्धता से बैंकों की सक्षमता और लाभप्रदता प्रतिकूल रूप से प्रभावित हुई। इस प्रकार, सरकार, रिजर्व बैंक तथा वाणिज्यिक बैंकों के बीच वास्तविक संयुक्त तुलना पत्र में लेनदेन राजकोषीय प्राथमिकताओं से संचालित होते थे, न कि वित्तीय प्रबंधन तथा वाणिज्यिक सक्षमता के विवेकसम्मत सुदृढ़ सिद्धांतों से। तब यह स्वीकार किया गया कि यह दृष्टिकोण वस्तुतः पारदर्शिता, जबाबदेही तथा दक्षता की प्राप्ति के लिए प्रोत्साहन की हानि की ओर ले जाता है।

### बैंकिंग

भारत बैंकिंग प्रणालीगत 16 सालों में उल्लेखनीय बदलावों से गुजरी है। इस अवधि में नये-नये बैंक, नयी लिखतें, नयी खिड़कियां (सरणियां), नये अवसर और इन सभी के साथ-साथ नयी-नयी चुनौतियां आयीं। जहाँ अपविनियमन ने बैंकों को अपनी आयों को बढ़ाने के लिए नये-नये द्वार खोले, कहीं इससे महत्तर प्रतिस्पर्धा और परिणामस्वरूप महत्तर जोखिम भी आये। भारत ने विवेक-सम्मत उपायों को अपनाया जिनका उद्देश्य बैंकिंग प्रणाली को शक्ति प्रदान करना तथा महत्तर पारदर्शिता, जबाबदेही और सार्वजनिक विश्वसनीयता के माध्यम से इसकी सुदृढ़ता और सुरक्षा को सुनिश्चित करना था। पूंजी-पर्याप्तता अनुपात मार्च 2006 की समाप्ति तक अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों के लिए बढ़ाकर 12.4 प्रतिशत कर दिया गया, जोकि अंतरराष्ट्रीय मानदण्ड से काफी ऊँचा है। वाणिज्यिक बैंकों का निवल लाभ 2004-05 तथा 2005-06 के दौरान उनकी कुल आस्तियों का 0.9 प्रतिशत रहा जो 1995-96 के स्तर से 0.16 प्रतिशत उच्चतर है। अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों के कुल ऋणों में गैर-निष्पादक ऋणों का अनुपात जो मार्च 1997 के अंत में 15.7 प्रतिशत जितना उच्च था, मार्च 2006 के अंत तक तेजी से घटकर 3.3 प्रतिशत पर आ गया। कुल अग्रिमों की तुलना में उनकी निवल गैर-निष्पादक आस्तियां 2004-05 के दौरान रहीं 2.0 प्रतिशत की तुलना में 2005-06 के दौरान घटकर 1.2 प्रतिशत रह गयीं। वर्ष 2006-07 के लिए उपलब्ध अधिकांश बैंकों के प्राथमिक वित्तीय परिणामों के अनुसार उनकी वित्तीय सुदृढ़ता में और सुधार हुआ है।

हमारा बैंकिंग क्षेत्र विश्व भर में अतुलनीय है क्योंकि इसमें प्रतिस्पर्धा, विनियमन और स्वामित्व के व्यापक रूप से नवीन अभिमुखीकरण का संगम है और वह भी गैर-व्यवधानकारी और मितव्ययिता के साथ हुआ है। वस्तुतः हमारा बैंकिंग सुधार लम्बायमान समस्याओं के प्रबंधन में

सार्वजनिक क्षेत्र की गतिशीलता तथा प्रतिस्पर्धी बनने और विस्तार करने के लिए घरेलू और विदेशी निजी क्षेत्र को समर्थ बनाने में सरकारी नीति की प्रगतिशीलता का एक अच्छा उदाहरण है। भारत में कोई बैंकिंग संकट नहीं रहा है।

सरकार ने राष्ट्रीयकृत बैंकों में अपने स्वामित्व को कम करने तथा निजी स्वामित्व को जोड़ने के लिए कदम उठाये हैं, परंतु उनके सार्वजनिक क्षेत्र की विशेषता को बदले बिना। इस दृष्टिकोण का अंतःवर्ती तर्क यह सुनिश्चित करना है कि रूपान्तरण की प्रक्रिया में भी सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों को सांविधिक विशेषताएं गुम नहीं हुई हैं। बैंकों के शेयरों के स्वस्थ बाजार मूल्यों के कारण सरकार द्वारा बैंकों में पूंजी का निवेश सरकार के लिए लाभप्रद बन गया है।

ब्रिटेन के मॉडल की तर्ज पर एक स्वतंत्र भारतीय बैंकिंग संहिता एवं मानक बोर्ड गठित किया गया ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि ग्राहकों के साथ न्यायपूर्ण व्यवहार सुनिश्चित करने के लिए एक व्यापक आचरण संहिता विकसित की जाए और उसका अनुपालन किया जाए। महत्तर वित्तीय समावेशन प्राप्त करने की दृष्टि से नवंबर 2005 से सभी बैंकों को 'शून्य' या बहुत कम न्यूनतम शेष राशि के साथ और न्यूनतम प्रभारों वाले 'नो फ्रिल्स' बैंकिंग खाते उपलब्ध कराने को कहा गया है जो ऐसे खातों तक जनसंख्या के बहुत बड़े भाग के लिए पहुंचना सम्भव बनायेंगे। बैंकों से अनुरोध किया गया है कि वे अपनी वर्तमान परम्परा की समीक्षा करें ताकि उन्हें 'वित्तीय समावेशन' के उद्देश्य के अनुरूप बनाया जा सके।

बैंकिंग लोकपाल की एक योजना है जो 15 शहरों में स्थित है और बैंक ग्राहकों की शिकायतों का निराकरण कर रही है। पर्यवेक्षी मूल्यांकन में ग्राहक सेवा को उच्च प्राथमिकता दी गयी है तथा रिजर्व बैंक को तदनुसार विनियामक सुभीता प्रदान की गयी है।

रिजर्व बैंक में पर्यवेक्षी ढांचे को सुदृढ़ करने की दृष्टि से 1994 में वित्तीय पर्यवेक्षण बोर्ड का गठन किया गया था जिसमें रिजर्व बैंक के केंद्रीय बोर्ड के कुछ चुनिंदा सदस्य शामिल किये गये जिन्हें 'पर्यवेक्षण' पर निर्बाध रूप से ध्यान देने की अनेक प्रकार की व्यावसायिक विशेषज्ञता प्राप्त है, तथा जो वाणिज्यिक बैंकों और वित्तीय संस्थाओं के पर्यवेक्षण के समन्वित दृष्टिकोण को सुनिश्चित कर सके। रिजर्व बैंक ने 1995 में बैंकों की अप्रत्यक्ष निगरानी और चौकसी प्रणाली भी शुरू की है जो संवेदनशील संस्थाओं के प्रत्यक्ष निरीक्षण के लिए एक सर्तकता सकेतक के रूप में एक जल्दी चेतावनी प्रणाली भी उपलब्ध कराती है।

### *वित्तीय बाजारों का विकास*

1990 के दशक के प्रारम्भिक वर्षों से पूर्व भारतीय वित्तीय बाजारों की नियंत्रित ब्याज दरें, उन पर मात्रात्मक सीमाएं, सांविधिक पूर्व-क्रय संबंधी अपेक्षाएं, सरकार की प्रतिभूतियों के लिए प्रतिबद्ध बाजार, केंद्रीय बैंक द्वारा वित्त-पोषण पर अत्यधिक निर्भरता, निर्धारित विदेशी मुद्रा की विनिमय दरें तथा चालू और पूंजी खाते पर प्रतिबंध आदि विशेषताएं थीं। विभिन्न सुधारों के परिणामस्वरूप अब वित्तीय बाजार एक ऐसी प्रणाली में रूपांतरित हो गये हैं जिनकी विशेषताएं हैं - बाजार द्वारा निर्धारित ब्याज दरें और विदेशी मुद्रा विनिमय दरें, मूल्य आधारित मौद्रिक नीति की लिखते, चालू खाते की परिवर्तनीयता, चरणबद्ध रूप में पूंजी खाते का उदारीकरण तथा सरकारी प्रतिभूति बाजार में नीलामी आधारित प्रणाली। एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि जबसे सरकारी प्रतिभूति बाजारों में वित्तीय संस्थागत निवेश को तथा अनिवासियों की सहभागिता को सीमित किया गया है, और उनपर विवेक-सम्मत सीमाएं लगायी गयी हैं, तब से सरकारी प्रतिभूतियां और कंपनी ऋण बाजार अनिवार्यतः घरेलू निवेश से प्रेरित हैं।

रिजर्व बैंक ने वित्तीय बाजारों के विकास के लिए एक सक्रिय भूमिका ग्रहण की है। इन बाजारों का विकास ऐसे

सुनियोजित और क्रमबद्ध तरीके से तथा सावधानीपूर्वक किया गया है, कि इनकी गतिविधियां वास्तविक क्षेत्र के अन्य बाजारों में हुई गतिविधियों के अनुरूप रहें। बाजार की बुनियादी संरचना, प्रौद्योगिकी तथा बाजार सहभागियों और वित्तीय संस्थाओं की क्षमताओं के एक संगत रूप में विकास करने की जरूरत के अनुसार उनके विकास के क्रम बनाये गये हैं।

रिज़र्व बैंक ने मुद्रा बाजार के विकास करने को सर्वोच्च प्राथमिकता दी है क्योंकि यह मौद्रिक नीतियों को वित्तीय बाजारों तक पहुँचाने में और अंततः वास्तविक अर्थव्यवस्था के लिए संचरण प्रणाली-तंत्र का मुख्य संपर्क बिंदु है। सरकारी प्रतिभूति बाजार का विकास करने में रिज़र्व बैंक की विशेष रुचि है क्योंकि यह भी एक अपविनियमित परिवेश में मौद्रिक नीतिगत धड़कनों के प्रभावी संचरण में मुख्य भूमिका निभाता है।

जून 2000 में विदेशी मुद्रा प्रबंध अधिनियम (फेमा) को कानून बनाकर एक गुणात्मक परिवर्तन कानूनी ढांचे में लाया गया जिसके द्वारा विनियमन के उद्देश्यों को पुनः पारिभाषित किया गया, जिसका उद्देश्य रखा गया व्यापार और भुगतान को सुविधाजनक बनाना तथा भारत में विदेशी मुद्रा बाजारों के विकास और उनकी कार्यप्रणाली को सुव्यवस्थित करना। कानूनी ढांचे में विकासात्मक आयाम तथा व्यवस्थितता और स्थिरता दोनों की परिकल्पना की गयी है। यह विधान सरकार को यह शक्ति प्रदान करता है कि यदि सार्वजनिक हित में अपेक्षित हो तो सरकार नियंत्रणों को पुनः लागू कर सकती है। रिज़र्व बैंक ने विदेशी मुद्रा बाजार के हाज़िर और वायदा घटकों के विकास के लिए विभिन्न उपाय किये हैं। बाजार सहभागियों को भी विदेशी मुद्रा परिचालन करने तथा अपने जोखिमों का प्रबंधन करने के लिए महत्तर नमनीयता प्रदान की गयी है।

मुद्रा, सरकारी प्रतिभूति और विदेशी मुद्रा बाजारों के बीच संबंध स्थापित किये गये हैं जो बढ़ रहे हैं। प्राथमिक बाजार में मूल्य की खोज (सही मूल्य का अंकन) पहले की

अपेक्षा अधिक विश्वसनीय है तथा द्वितीयक बाजारों ने महत्तर गहनता तथा तरलता प्राप्त की है। सभी बाजारों में सहभागियों और लिखतों की संख्या बढ़ी है इनमें सबसे ज्यादा प्रभावशाली सरकारी प्रतिभूति बाजार रहा है। संस्थागत तथा प्रौद्योगिकी गत बुनियादी संरचना रिज़र्व बैंक द्वारा निर्मित की गयी है, ताकि परिचालनों में पारदर्शिता लायी जा सके तथा सुरक्षित भुगतान और निपटान प्रणालियां प्रदान की जा सकें।

### मौद्रिक नीति

भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम, 1934 की उद्देश्यिका में रिज़र्व बैंक की मौद्रिक नीति के उद्देश्यों को मोटे तौर पर निर्धारित कर दिया गया है जो इस प्रकार है - 'बैंक नोटों के निर्गम को विनियमित करना तथा भारत में मौद्रिक स्थिरता प्राप्त करने की दृष्टि से प्रारक्षित निधियां रखना तथा आम तौर पर देश की मुद्रा और ऋण प्रणाली को इसके हित में परिचालित करना।' इस प्रकार अनेक उन्नत और उदीयमान देशों में चालू प्रवृत्ति से भिन्न भारत में मूल्यस्थिरता अथवा औपचारिक रूप से मुद्रास्फीति के लक्ष्यनिर्धारण के लिए कोई स्पष्ट अधिदेश नहीं है।

भारत में मौद्रिक नीति के व्यापक उद्देश्य हैं - मूल्यस्थिरता के तर्क-सम्मत स्तर को बनाये रखना तथा आर्थिक वृद्धि की दर को तेज करने में सहायता करने के लिए पर्याप्त ऋण का प्रवाह सुनिश्चित करना। मूल्य स्थिरता और आर्थिक वृद्धि पर दिये गये अपेक्षाकृत जोर को अर्थव्यवस्था की विद्यमान परिस्थितियों के अनुसार संतुलित किया जाता है। भारतीय अर्थव्यवस्था में बढ़ते हुए खुलेपन की दृष्टि से हाल की अवधि में व्यापक आर्थिक और वित्तीय स्थिरता संबंधी मुद्दों को अतिरिक्त महत्त्व दिया गया है।

वित्तीय बाजारों के सुधारों के चलते वित्तीय बाजारों की गति में भी परिवर्तन लाने की जरूरत को स्वीकार किया गया और उन्होंने मौद्रिक नीति की परिचालनगत प्रक्रियाओं में भी बदलाव लाने के लिए प्रेरित किया।

मौद्रिक लक्ष्यबद्ध ढांचे से अलग हट कर 1998-99 से बहुल संकेतक दृष्टिकोण को अपनाने के साथ-साथ मौद्रिक नीतिगत ढांचे में महत्तर नमनीयता प्रदान की गयी है।

नये परिचालन परिवेश में मौद्रिक नीति के संचालन में जब भी आवश्यक हो रिजर्व बैंक उत्तरोत्तर रूप में मिश्रित (मिले-जुले) बाजार आधारित लिखतों और प्रारक्षित अपेक्षाओं में परिवर्तनों पर अधिकाधिक निर्भर रहा है। प्रत्यक्ष लिखतों पर निर्भरता को आम तौर पर कम कर दिया गया है तथा अप्रत्यक्ष लिखतों पर नीति संबंधी वरीयता चालू मौद्रिक नीतिगत परिचालनों का केंद्र बिंदु हो गया है। तथापि जब भी उचित हो प्रत्यक्ष लिखतों के उपयोग करने में कोई संकोच नहीं है। रिजर्व बैंक वर्तमान में यह सुनिश्चित करने के लिए कि प्रणाली में उपयुक्त चलनिधि बनाये रखी जाये जो मूल्य स्थिरता के उद्देश्य के अनुरूप हो रिजर्व बैंक विविध लिखतों का उपयोग करता है ताकि ऋण की सभी वैध अपेक्षाओं को पूरा किया जा सके। इस उद्देश्य के लिए रिजर्व बैंक अन्य बातों के साथ-साथ चलनिधि समायोजन सुविधा (एलएएफ), बाजार स्थिरीकरण योजना तथा नकदी प्रारक्षित अनुपात सहित खुले बाजार के परिचालनों के माध्यम से चलनिधि के सक्रिय प्रबंधन की नीति का अनुसरण करता है तथा नीति संबंधी लिखतों को अपनी इच्छा से लागू करता है जो स्थिति द्वारा अपेक्षानुसार लचीली भी होती हैं। अपनी चलनिधि समायोजन सुविधा के संचालन के लिए, जिसके अंतर्गत केंद्रीय बैंक बैंकों के लिए रोजाना नीलामियां करता है, रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित रिवर्स रिपो/रिपो दरों में समय-समय पर परिवर्तन करता रहता है, यह चलनिधि समायोजन सुविधा भारतीय अर्थव्यवस्था में ब्याज दरों के संकेत देने के लिए मुख्य लिखत के रूप में उभरी है। मौद्रिक नीति की पारदर्शिता और संचार को सुधारने के लिए समानान्तर रूप से संस्थागत प्रणाली-तंत्र विकसित किये गये हैं। गवर्नर रेडराडो ने जिन्होंने इससे पूर्व वक्तव्य दिया था,

अनेक मुद्दों का हवाला दिया था जिनमें उदीयमान बाजारी अर्थव्यवस्थाओं में संप्रेषण सरणी में आने वाली कठिनाइयां भी शामिल हैं, और मैं उनसे सहमत हूँ।

परम्परागत रूप से, मौद्रिक नीति के सम्प्रेषण की चार मुख्य सरणियों की पहचान की गयी है वे हैं - ब्याज दर, ऋण समुच्चय, आस्ति मूल्य तथा विदेशी मुद्रा विनिमय दर सरणियां। ब्याज दर सरणी मौद्रिक नीति की प्रमुख सम्प्रेषण प्रक्रिया तंत्र के रूप में उभरी है। तथापि, यह उचित होगा कि वास्तविक गतिविधि पर मौद्रिक प्रभावों को उत्पन्न करने के लिए ऋण सरणी को भी ब्याज दर सरणी के साथ-साथ चलने को महत्व दिया जाए। मौद्रिक प्राधिकारियों द्वारा ब्याज दरों में परिवर्तन वित्तीय आस्तियों और देयताओं के बाजार मूल्यांकन की दृष्टि से सम्पत्तिगत प्रभाव उत्पन्न करने के लिए आस्ति मूल्यों में गति लाती है। विनिमय दर सरणी भारतीय संदर्भ में अपेक्षाकृत कम महत्वपूर्ण है, हालांकि यह प्रासंगिकता धीरे-धीरे बढ़ रही है। हाल की अवधि में एक पांचवी सरणी - 'अपेक्षाओं' ने यदि परम्परागत चार सरणियों पर इसके प्रभाव की दृष्टि से देखें तो अग्रोन्मुखी मौद्रिक नीति के संचालन में प्रमुखता प्राप्त कर ली है।

### वर्तमान चुनौतियां

अपनी बात समाप्त करने से पहले मैं आप सबके साथ उन चुनौतियों की भी चर्चा करना चाहूंगा जो मध्यावधि के लिए हमारे सामने हैं।

पहली, सर्वाधिक जटिल और चुनौतीपूर्ण मुद्दा कृषि के विकास से जुड़ा है। जहाँ 60 प्रतिशत से भी ज्यादा श्रमिक बल कृषि पर निर्भर है। वहीं इस क्षेत्र का सदेउ में योगदान 20 प्रतिशत है। इसके अलावा कृषि से उत्पन्न सदेउ की वृद्धि जनसंख्या में वृद्धि की दर से मामूली-सी ही अधिक है जो गरीबी के तेजी से उन्मूलन के लिए पर्याप्त नहीं है। 29 मई 2007 को हमारे माननीय प्रधान मंत्री जी ने 11वीं पंचवर्षीय योजना में कृषि की वृद्धि दर को दो गुना

बढ़ाकर 4.0 प्रतिशत करने की एक प्रमुख योजना की घोषणा की थी। सरकार राज्यों द्वारा शुरू की गयी नयी कृषि संबंधी पहलों के लिए 250 बिलियन रुपए उपलब्ध करायेगी। एक समय-बद्ध खाद्य सुरक्षा मिशन की भी घोषणा की गयी ताकि खाद्य उत्पादों की बढ़ती कीमतों से निजात पायी जा सके और अगले तीन वर्षों में उनकी उपलब्धता सुनिश्चित की जा सके।

दूसरी, किसी भी विकासशील देश में वृद्धि की गाथा तब तक पूरी नहीं होती जब तक कि गरीबी और रोजगार की स्थिति पर इसके प्रभाव का आकलन न कर लिया जाए। योजना आयोग ने इस बात पर बल दिया है कि भारत को 'आर्थिक समावेशनपरक वृद्धि' पर जोर देना चाहिए। गरीबों की रेखा से नीचे रहने वाले व्यक्तियों की संख्या, जो 1993-94 में 36 प्रतिशत थी, घटकर 2004-05 में 22.0 प्रतिशत रह गयी है। पुनः मुद्दा यह है कि अधिकाधिक लोगों को उत्पादक रोजगार के अवसर प्रदान करके अधिक से अधिक लोगों को इस गरीबी की रेखा के नीचे से बाहर निकालना है। 11वीं पंचवर्षीय योजना का यह दृष्टिकोण पत्र यह सुझाता है कि कृषि उत्पादन से संबंधित सदेउ की वृद्धि को प्रति वर्ष दुगना कर 4 प्रतिशत तक लाने से ग्रामीण रोजगार की स्थिति में सुधार आयेगा। इसके लिए वास्तविक मजदूरी (वेतन) को बढ़ाना होगा और अल्प रोजगारी को कम करना होगा। तथापि यदि यह प्राप्त भी कर लिया गया तो 9 प्रतिशत की समग्र वृद्धि दर कृषि और गैर-कृषि परिवारों के बीच की विषमता को और बढ़ा देगी, जब तक कि लगभग 10 मिलियन कामगारों को, जो वर्तमान में कृषि से जुड़े हैं, लाभकारी गैर-कृषि रोजगार प्राप्त नहीं हो जाते। यह एक बड़ी चुनौती है, न केवल गैर-कृषि रोजगार के सृजन के लिए, बल्कि इसके लिए अपेक्षित अनुकूल स्थान और प्रकार के जॉब बनाने के लिए भी।

तीसरी, जनसंख्या के एक बहुत बड़े भाग को आवश्यक सार्वजनिक सेवाएं जैसे शिक्षा और स्वास्थ्य, उपलब्ध कराना, एक बहुत बड़ी संस्थागत चुनौती है। बड़ी गम्भीरता से यह महसूस किया गया है कि शिक्षा ही गरीबों को वह शक्ति प्रदान करेगी कि वे वृद्धि की प्रक्रिया में शामिल हो सकें तथा स्वास्थ्य सेवाओं की सुपुर्दगी में आये भारी अंतराल को, गरीबों को उपलब्ध होने वाली न्यूनतम पैठ की दृष्टि से, पाटने की जरूरत है।

चौथी, हाल के वर्षों में भारत में आर्थिक वृद्धि के लिए एक महत्वपूर्ण बाधा बुनियादी सुविधाओं की कमी रही है। ग्यारहवीं योजना के दृष्टिकोण पत्र में यह अनुमान लगाया गया है कि सदेउ की वृद्धि दर को 7 प्रतिशत से 9 प्रतिशत तक बढ़ाने में बुनियादी संरचना के क्षेत्र में निवेश के वर्तमान स्तर को अर्थात् सदेउ के 4.6 प्रतिशत से बढ़ाकर इस योजनावधि के दौरान 8 प्रतिशत करना होगा। पर्याप्त और गुणवत्तापूर्ण बुनियादी संरचना उपलब्ध कराने का मुद्दा सभी स्तरों पर नीति निर्माताओं का ध्यान पहले ही आकर्षित कर चुका है। यहाँ सर्वाधिक महत्वपूर्ण मुद्दे हैं - विनियामक ढांचे और समग्र निवेशगत माहौल का होना, जिन पर सरकार ध्यान दे रही है। निवेश के उच्चतर स्तरों के अलावा, गवर्नेंस (संचालन) और प्रबंधन के मुद्दों, जिनमें यथोचित मूल्यनिर्धारण और उपभोक्ता प्रकार के मुद्दे भी शामिल हैं, पर ध्यान दिया जा रहा है ताकि संतोषजनक परिणाम प्राप्त किये जा सकें।

## V. समापन

सेंट्रल बैंक ऑफ अर्जेटीना द्वारा और गवर्नर रेडराडो द्वारा व्यक्तिगत रूप से दिये गये सौजन्य के लिए अपनी हार्दिक कृतज्ञता तथा धन्यवाद देते हुए मैं अपनी बात समाप्त करता हूँ।